झारखण्ड उच्च न्यायालय, रांची

आपराधिक पुनरीक्षण सं० - 435/2023

कामिनी मोहन मेहरा ..... **याचिकाकर्ता**

-बनाम-

1. झारखंड राज्य
2. अभय कुमार सिंह ..... **विपक्ष**

न्यायालय : माननीय न्यायमूर्ति सुभाष चंद

याचिकाकर्ता की ओर से : श्री शादाब इकबाल, अधिवक्ता

राज्य की ओर से : श्री विश्वनाथ रॉय, ए.पी.पी.

सी.ए.वी. 28.11.2023 **घोषित 11.12.2023**

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता तथा राज्य के विद्वान विशेष लोक अभियोजक को सुना गया।
2. वर्तमान आपराधिक पुनरीक्षण वाद मुरहू थाना कांड संख्या 85/2019 में विद्वान एसडीजेएम, खूंटी द्वारा पारित दिनांक 17 जनवरी, 2023 के आदेश के विरुद्ध प्रस्तुत किया गया है, जिसके तहत याचिकाकर्ता द्वारा सीआरपीसी की धारा 239 और 240 के तहत दायर डिस्चार्ज याचिका को खारिज कर दिया गया है।
3. इस आपराधिक पुनरीक्षण के लिए महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि सूचक ने इन आरोपों से संबंधित पुलिस स्टेशन में लिखित सूचना दी थी कि वह मुरहू शाखा जिला खूंटी में बचत बैंक खाता संख्या 31484484727 का खाताधारक है, जिसमें से 35 लाख रुपये की राशि अनाधिकृत रूप से संजय कुमार कुंडू पुत्र स्व. मन्ना कसेरा मेन रोड, मुरहू जिला खूंटी के बैंक खाते में स्थानांतरित कर दी गई थी, जिसका खाता संख्या 32241683733 है। उक्त 35 लाख रुपये की राशि संजय कुमार कुंडू द्वारा तीन किस्तों में अर्थात 27 फरवरी, 2019 को 15

लाख रुपये, 28 फरवरी, 2019 को 13 लाख रुपये तथा 1 मार्च, 2019 को 7 लाख रुपये की निकासी की गई तथा अंततः 2 अप्रैल, 2019 को संजय कुमार कुंडू ने अपना बैंक खाता बंद कर दिया। मामले का खुलासा 26 सितंबर, 2019 को तब हुआ जब खाताधारक मिथिला शरण अपना पासबुक अपडेट कराने के लिए भारतीय स्टेट बैंक, मुरहू शाखा में आए। उन्होंने पाया कि उनके खाते से 35 लाख रुपये अनाधिकृत रूप से स्थानांतरित कर दिए गए हैं और उन्होंने 27 सितंबर, 2019 को शाखा प्रबंधक को सूचित किया। तब वर्तमान शाखा प्रबंधक श्री अभय कुमार सिंह ने तत्कालीन शाखा प्रबंधक कामिनी मोहन मेहरा से उनके मोबाइल फोन पर संपर्क किया, उसके बाद कामिनी मोहन मेहरा 30 सितंबर, 2019 को शाखा में आईं और खाते में 10,00,000/- रुपये जमा कर दिए। 30 सितंबर, 2019 को उन्होंने मिथिला शरण से भी मुलाकात की और उन्हें आश्वासन दिया कि दस दिनों के भीतर पूरी राशि उनके खाते में जमा कर दी जाएगी। 5 अक्टूबर, 2019 को श्री कामिनी मोहन मेहरा ने शाखा प्रबंधक को अवगत कराया कि एक व्यक्ति उनकी ओर से उक्त खाते में 8,00,000/- रुपये जमा करने आ रहा है। इसके अलावा 10 अक्टूबर 2019 को कामिनी मोहन मेहरा ने पुनः शाखा प्रबंधक को अवगत कराया कि उक्त खाते में 11,00,000/- रूपये जमा किये जायेंगे। 11 अक्टूबर 2019 को 4,50,000/- रूपये जमा किये गये। 15 अक्टूबर 2019 को श्री मेहरा ने फोन पर कहा कि शाखा प्रबंधक हेमंत अरुण साबू के पास जायें और उनसे 50,000/- रूपये लेकर मिथिला शरण के खाते में जमा करने को कहें। 16 अक्टूबर 2019 को श्री मेहरा स्वयं आये और कहा कि शेष राशि जमा कर दी जायेगी। इस प्रकार सम्पूर्ण राशि उक्त खाते में जमा कर दी गयी। अत: आरोपी संजय कुमार कुंडू एवं कामिनी मोहन मेहरा के विरूद्ध मुरहू थाना केस नंबर 85/2019 आईपीसी की धारा 406, 409, 467 और 468 के तहत अपराध के लिए प्राथमिकी दर्ज की गयी।

4. **सूचक अभय कुमार सिंह**, शाखा प्रबंधक का **पुनः बयान केस डायरी के पैरा 7** में है जिसमें उन्होंने एफ.आई.आर. में लगाए गए आरोपों को दोहराया है।
5. **केस डायरी के पैरा 9** में गवाह **अमरजीत राम** का बयान दर्ज किया गया जो **एसबीआई मुरहू शाखा का कैशियर** है। उसने एफ.आई.आर में लगाए गए आरोपों की पुष्टि करते हुए बताया कि **27 फरवरी 2019 को संजय कुमार कुंडू**

उसके काउंटर पर उसके खाते से 15 लाख रुपए निकालने आया था। उसने इतनी बड़ी रकम निकालने का कारण पूछा तो उसने बताया कि यह रकम उसकी जमीन की बिक्री से मिली रकम है और उसे इलाज के लिए इसकी जरूरत है क्योंकि वह वेल्लोर जा रहा था। इसी मुद्दे पर उसने तत्कालीन शाखा प्रबंधक कामिनी मोहन मेहरा से संपर्क किया और शाखा प्रबंधक ने भुगतान करने का आदेश दिया। संजय कुमार कुंडू ने 28 फरवरी 2019 को 13,00,000 रुपए और 1 मार्च 2019 को 7,00,000 रुपए निकाल लिए। अंततः उन्होंने 2 अप्रैल, 2019 को अपना खाता बंद कर दिया। उन्होंने यह भी कहा कि **मिथिला शरण के खाते से 35,00,000/- रुपए की इतनी बड़ी राशि उनकी व्यक्तिगत उपस्थिति में उनकी अनुमति के बिना स्थानांतरित नहीं की जा सकती। इसके बाद कामिनी मोहन मेहरा एसबीआई शाखा में आए और उन्होंने 10,00,000/- रुपए जमा किए। इसके बाद कामिनी मोहन मेहरा की ओर से विभिन्न माध्यमों से 35,00,000/- रुपए की पूरी राशि जमा कर दी।**

6. केस डायरी के **पैरा 10** में गवाह **प्रभा कच्छप**, जो घटना की तिथि को एस.बी.आई. मुरहू शाखा में पदस्थापित थी, ने भी अभियोजन पक्ष की कहानी की पुष्टि की और कैशियर अमरजीत राम जैसा ही बयान दिया।
7. केस डायरी के **पैराग्राफ 18 और 19** में गवाह **रमन कुमार तिवारी** और **हेमंत महतो** ने भी इसी तरह का बयान दिया है।
8. **केस डायरी के पैराग्राफ 36** में **सूचक मिथिला शरण** ने बताया कि उनके खाता संख्या 31484484727 से अनाधिकृत रूप से 35,00,000/- रुपये ट्रांसफर किए गए हैं। इसकी जानकारी उन्हें 26 सितंबर 2019 को तब हुई जब वे अपना पासबुक अपडेट कराने बैंक पहुंचे। उन्होंने इस संबंध में 27 सितंबर 2019 को शाखा प्रबंधक से शिकायत की। **इसके बाद 30 सितंबर 2019 को उन्हें एसबीआई मुरहू शाखा में बुलाया गया, जहां उनकी मुलाकात तत्कालीन शाखा प्रबंधक कामिनी मोहन मेहरा से हुई, जिन्होंने बताया कि गलती से उनके खाते से उक्त राशि ट्रांसफर हो गई है। उन्होंने उसी दिन अपने खाते में 10,00,000/- रुपये जमा भी कर दिए और कहा कि शेष राशि दस दिनों के अंदर जमा कर दी जाएगी। अंततः उनके खाते में कुल 35,00,000/- रुपए जमा हो गए।**

9. केस डायरी के **पैराग्राफ 47** में संजय कुमार कुंडू ने कहा है कि बैंक मैनेजर कामिनी मेहरा बस से आती थी और वह उसके संपर्क में आया। **मैनेजर कामिनी मेहरा ने तुपुदाना रांची में स्थित उसकी जमीन खरीदने के लिए कहा। वह इसके लिए तैयार हो गया और कामिनी मेहरा ने आश्वासन दिया कि जमीन की खरीद राशि उसके खाते में जमा कर दी जाएगी।** मैनेजर ने उसे 23 फरवरी 2019 को बैंक आने और राशि उसके खाते में जमा करने के लिए कहा। **इस प्रकार उसके खाते में 35,00,000 रुपये जमा हो गए, बाद में उसने उससे कहा कि वह उक्त जमीन नहीं खरीदेगा और उसने खाते से उक्त राशि निकालकर उसे वापस करने के लिए कहा। उसने अपने खाते से उक्त राशि निकालकर कामिनी मोहन मेहरा को दे दी और उसका खाता भी बंद कर दिया गया।**

10. केस डायरी के **पैरा 54** में सुरेखा तिग्गा का बयान दर्ज किया गया। उन्होंने यह भी कहा कि मिथिला शरण के खाते से 35,00,000/- रुपए की राशि के हस्तांतरण के संबंध में ट्रांसफर वाउचर दिया गया था। **उन्होंने प्रभा मैम से कंप्यूटर में क्यू जनरेट करने से पहले हस्ताक्षर का मिलान करने को कहा। प्रभा मैम ने मैनेजर के कहने पर क्यू को छोड़ने को कहा। क्यू कंप्यूटर में छोड़ दिया गया और 35,00,000/- रुपए की बड़ी राशि हस्तांतरित हो गई, जो खाताधारक और उनकी अनुमति के बिना हस्तांतरित नहीं की जा सकती।** उन्होंने केवाईसी का भी सत्यापन किया।

11. केस डायरी के **पैराग्राफ 77** में कामिनी मोहन मेहरा और संजय कुमार कुंडू के मोबाइल फोन की सीडीआर डिटेल भी दी गई और अंततः आरोप पत्र दाखिल किया गया।

12. मैंने पक्षों के विद्वान वकील को सुना है और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया है।

13. यह स्थापित कानून है कि आरोप तय करते समय न्यायालय को एफ.आई.आर. में लगाए गए आरोपों और जांच के दौरान आई.ओ. द्वारा एकत्र किए गए साक्ष्यों, यानी मौखिक या दस्तावेजी, को भी ध्यान में रखना होता है। यदि एफ.आई.आर. में लगाए गए आरोपों और जांच के दौरान एकत्र किए गए साक्ष्यों से आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार मिलते हैं, तो न्यायालय को डिस्चार्ज आवेदन को स्वीकार करने से मना कर देना चाहिए।

यदि जांच के दौरान एकत्र किए गए संचयी साक्ष्यों, यानी मौखिक और दस्तावेजी, और एफ.आई.आर. में लगाए गए आरोपों से न्यायालय का यह निश्चित मत है कि मुकदमे के खिलाफ आगे बढ़ने का कोई आधार नहीं है, तो डिस्चार्ज के लिए आवेदन स्वीकार किया जा सकता है।

14. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **पलविंदर सिंह बनाम बलविंदर सिंह एवं अन्य के मामले में (2008) 14 एससीसी 504** के पैराग्राफ 13 में निम्नानुसार निर्णय दिया है:

> **"13. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के पश्चात, हम इस राय पर पहुँचे हैं कि उच्च न्यायालय ने आरोप तय करने के चरण में साक्ष्य की प्रशंसा के क्षेत्र में प्रवेश करते हुए, विवादित निर्णय पारित करने में गंभीर त्रुटि की है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 227 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए विद्वान सत्र न्यायाधीश का अधिकार क्षेत्र सीमित है। <u>प्रबल संदेह के आधार पर भी आरोप तय किए जा सकते हैं। साक्ष्य की प्रशंसा और मार्शलिंग उस समय न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में नहीं है</u>। इस मामले के इस पहलू पर इस न्यायालय द्वारा उड़ीसा राज्य बनाम देबेंद्र नाथ पाढ़ी के मामले में विचार किया गया है, जिसमें निम्न प्रकार से निर्णय दिया गया है:**
>
> **"23. उपर्युक्त चर्चा के परिणामस्वरूप, हमारे विचार में, स्पष्ट रूप से कानून यह है कि आरोप तय करने या संज्ञान लेने के समय अभियुक्त को कोई भी सामग्री प्रस्तुत करने का अधिकार नहीं है। सतीश मेहरा केस [सतीश मेहरा बनाम दिल्ली प्रशासन] में यह माना गया है कि ट्रायल कोर्ट के पास उन सामग्रियों पर भी विचार करने की शक्ति है जो अभियुक्त धारा 227 के चरण में प्रस्तुत कर सकता है, यह सही ढंग से तय नहीं किया गया है।"**

15. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **सीबीआई बनाम मुकेश प्रवीणचंद्र श्रॉफ के मामले में (2009) 16 एससीसी 429** के पैराग्राफ 2 में निम्नानुसार निर्णय दिया है:

> **"2. विशेष न्यायालय ने आरोपित आदेश के तहत आरोपी रघुनाथ लेखराज वाधवा, जितेन्द्र रतिलाल श्रॉफ और मुकेश प्रवीणचंद्र श्रॉफ को विशेष मामला संख्या 4/1997 से दोषमुक्त कर दिया है। आरोपित आदेश के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि विशेष न्यायालय ने दोषमुक्त करने के आदेश की आड़ में दोषमुक्त करने का आदेश पारित किया है। <u>यह अच्छी तरह से स्थापित है कि आरोप तय करने के चरण में यह देखना आवश्यक है कि</u>**

क्या आरोपियों के खिलाफ कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार हैं। हमारे विचार में, विशेष न्यायालय द्वारा उपरोक्त आरोपियों को दोषमुक्त करना उचित नहीं था।

16. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **विक्रम जौहर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य** मामले में **एआईआर 2019 एससी 2109** के पैराग्राफ 19 में निम्नानुसार निर्णय दिया है:

> **"19. इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि डिस्चार्ज आवेदन पर विचार करते समय, न्यायालय को यह निर्धारित करने के लिए अपने न्यायिक दिमाग का प्रयोग करना है कि क्या मुकदमा चलाने का मामला बनाया गया है या नहीं। यह सच है कि ऐसी कार्यवाही में, न्यायालय को सबूतों को इकट्ठा करके मिनी ट्रायल नहीं करना है।"**

17. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **पी. विजयन बनाम केरल राज्य एवं अन्य** मामले में **2010(2) एससीसी 398** के पैराग्राफ 11 और 25 में निम्नानुसार निर्णय दिया है:

> **"11. धारा 227 के चरण में, न्यायाधीश को केवल यह पता लगाने के लिए साक्ष्यों की छानबीन करनी होती है कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है या नहीं। दूसरे शब्दों में, आधार की पर्याप्तता पुलिस द्वारा दर्ज किए गए साक्ष्य या अदालत के समक्ष प्रस्तुत किए गए दस्तावेजों की प्रकृति को अपने दायरे में लेगी, जो स्पष्ट रूप से यह प्रकट करते हैं कि अभियुक्त के विरुद्ध संदेहास्पद परिस्थितियाँ हैं, जिससे उसके विरुद्ध आरोप तय किया जा सके। 25. जैसा कि पहले चर्चा की गई है, नई संहिता में धारा 227 न्यायाधीश को अभियुक्त को दहलीज पर ही बरी करने की विशेष शक्ति प्रदान करती है, यदि अभिलेखों और दस्तावेजों पर विचार करने के बाद, वह पाता है कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही के लिए "पर्याप्त आधार नहीं है"। दूसरे शब्दों में, उस चरण में अभिलेखों और दस्तावेजों पर उसका विचार केवल यह पता लगाने के सीमित उद्देश्य के लिए है कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है या नहीं। यदि न्यायाधीश इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार है, तो वह धारा 228 के तहत आरोप तय करेगा, यदि नहीं, तो वह आरोपी को आरोपमुक्त कर देगा। यह प्रावधान संहिता में इसलिए पेश किया गया था ताकि प्रथम दृष्टया मामला उजागर न होने पर सार्वजनिक समय की बर्बादी से बचा जा सके और आरोपी को टाले जा सकने वाले**

<u>उत्पीड़न और व्यय से बचाया जा सके।</u>

18. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **तरुण जीत तेजपाल बनाम गोवा राज्य एवं अन्य** के मामले में **2019(4) ईस्ट Cr C 208 (SC)** के पैराग्राफ 9.1 से 9.5 में निम्नानुसार निर्णय दिया है:

"<u>9.1 एन. सुरेश राजन (सुप्रा)</u> के मामले में इस न्यायालय को धारा 227/228 सीआरपीसी के तहत आरोप तय करने के चरण में कार्यवाही के दायरे पर विस्तार से विचार करने का अवसर मिला था। इस बिंदु पर इस न्यायालय के पिछले निर्णयों पर विचार करने के पश्चात, पैराग्राफ 29 से 31 में, इस न्यायालय ने निम्न प्रकार से अवलोकन किया है:

"29. हमने प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर विचार किया है तथा श्री रंजीत कुमार द्वारा प्रस्तुत प्रस्तुतियाँ हमें सराहनीय लगती हैं। यह सत्य है कि डिस्चार्ज के लिए आवेदनों पर विचार करते समय, न्यायालय अभियोजन पक्ष के मुखपत्र के रूप में कार्य नहीं कर सकता है अथवा डाकघर के रूप में कार्य नहीं कर सकता है तथा यह पता लगाने के लिए साक्ष्यों की छानबीन कर सकता है कि लगाए गए आरोप निराधार हैं अथवा नहीं, ताकि डिस्चार्ज का आदेश पारित किया जा सके। यह सामान्य बात है कि डिस्चार्ज के लिए आवेदन पर विचार करने के चरण में, न्यायालय को यह मानकर आगे बढ़ना होता है कि अभियोजन पक्ष द्वारा अभिलेख पर लाई गई सामग्री सत्य है तथा उक्त सामग्री एवं दस्तावेजों का मूल्यांकन इस दृष्टि से करना होता है कि क्या उनसे उभरने वाले तथ्य, उनके अंकित मूल्य पर, कथित अपराध के सभी तत्वों के अस्तित्व को प्रकट करते हैं। इस चरण में, सामग्री के सत्यापन मूल्य पर विचार किया जाना होता है तथा न्यायालय से यह अपेक्षा नहीं की जाती कि वह मामले की गहराई में जाए और यह मान ले कि साक्ष्यों के आधार पर दोषसिद्धि नहीं की जा सकती। हमारे मतानुसार, इस बात पर विचार किया जाना चाहिए कि क्या यह मानने का कोई आधार है कि अपराध किया गया है, न कि यह कि अभियुक्त को दोषी ठहराने का कोई आधार बनाया गया है। दूसरे शब्दों में, यदि न्यायालय को लगता है कि अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर अभियुक्त ने अपराध किया है, तो वह आरोप तय कर सकता है; यद्यपि दोषसिद्धि के लिए न्यायालय को इस निष्कर्ष पर पहुंचना होगा कि अभियुक्त ने अपराध किया है। कानून इस स्तर पर लघु परीक्षण की अनुमति नहीं देता।

30. इस संबंध में श्योराज सिंह अहलावत बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में इस

न्यायालय के हाल के निर्णय का संदर्भ दिया जा सकता है। [(2013) 11 एससीसी 476 : (2012) 4 एससीसी (क्रि) 21 : एआईआर 2013 एससी 52], जिसमें इस मुद्दे पर विभिन्न निर्णयों का विश्लेषण करने के बाद, इस न्यायालय ने ओंकार नाथ मिश्रा बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) [(2008) 2 एससीसी 561 : (2008) 1 एससीसी (क्रि) 507] में लिए गए निम्नलिखित दृष्टिकोण का समर्थन किया: (श्योराज सिंह अहलावत मामला [(2013) 11 एससीसी 476 : (2012) 4 एससीसी (क्रि) 21 : एआईआर 2013 एससी 52], एससीसी पृष्ठ 482, पैरा 15)

> "15. 11. यह सामान्य बात है कि आरोप तय करने के चरण में न्यायालय को अभिलेख पर मौजूद सामग्री और दस्तावेजों का मूल्यांकन करना होता है, ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या उनसे प्राप्त तथ्यों को उनके अंकित मूल्य पर लिया जाए, तो कथित अपराध के सभी तत्वों के अस्तित्व का पता चलता है। उस चरण में न्यायालय से अभिलेख पर मौजूद सामग्री के सत्यापन मूल्य में गहराई से जाने की अपेक्षा नहीं की जाती है। इस बात पर विचार करने की आवश्यकता है कि क्या यह मानने का कोई आधार है कि अपराध किया गया है और अभियुक्त को दोषी ठहराने का कोई आधार नहीं है। उस चरण में, सामग्री पर आधारित मजबूत संदेह भी, जो न्यायालय को कथित अपराध के तथ्यात्मक तत्वों के अस्तित्व के बारे में एक अनुमानात्मक राय बनाने के लिए प्रेरित करता है, उस अपराध के संबंध में अभियुक्त के खिलाफ आरोप तय करने को उचित ठहराएगा। (ओंकार नाथ मामला [(2008) 2 एससीसी 561: (2008) 1 एससीसी (Cri) 507], एस.सी.सी. पृष्ठ 565, पैरा 11)"
>
> (मूल में जोर दिया गया है)

31. अब सज्जन कुमार [सज्जन कुमार बनाम सीबीआई, (2010) 9 एससीसी 368: (2010) 3 एससीसी (क्रि) 1371] और दिलावर बालू कुराने [दिलावर बालू कुराने बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2002) 2 एससीसी 135: 2002 एससीसी (क्रि) 310] में इस न्यायालय के निर्णयों पर वापस आते हुए, जिन पर प्रतिवादियों ने भरोसा किया है, हमारा यह मत है कि वे अपना मामला आगे नहीं बढ़ाते हैं। उपर्युक्त निर्णय संहिता की धारा 227 के प्रावधान पर विचार करते हैं और यह स्पष्ट करते हैं कि आरोप मुक्त करने के चरण में न्यायालय मामले के पक्ष और विपक्ष में घूम-घूम कर जांच नहीं कर सकता है और साक्ष्यों का

मूल्यांकन इस प्रकार नहीं कर सकता है मानो वह कोई मुकदमा चला रहा हो। यह उल्लेखनीय है कि संहिता सत्र न्यायालय द्वारा उसके द्वारा विचारणीय मामले में धारा 227 के अंतर्गत अभियुक्त को उन्मोचित करने का प्रावधान करती है; पुलिस रिपोर्ट पर संस्थित मामले धारा 239 के अंतर्गत आते हैं तथा पुलिस रिपोर्ट के अलावा अन्य आधार पर संस्थित मामले धारा 245 के अंतर्गत आते हैं। उपर्युक्त धाराओं को पढ़ने से यह स्पष्ट है कि उनमें अभियुक्त को उन्मोचित करने के संबंध में कुछ भिन्न प्रावधान हैं:

31.1. धारा 227 के तहत, ट्रायल कोर्ट को अभियुक्त को मुक्त करना आवश्यक है यदि वह "यह मानता है कि अभियुक्त के खिलाफ कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार नहीं है"। हालांकि, धारा 239 के तहत निर्वहन का आदेश तब दिया जा सकता है जब "मजिस्ट्रेट अभियुक्त के खिलाफ आरोप को निराधार मानता है"। निर्वहन करने की शक्ति धारा 245(1) के तहत तब प्रयोग की जा सकती है जब, "मजिस्ट्रेट, दर्ज किए जाने वाले कारणों से यह मानता है कि अभियुक्त के खिलाफ कोई मामला नहीं बनाया गया है, जो अगर अप्रतिबंधित है, तो उसे दोषी ठहराया जा सकता है"।

31.2. धारा 227 और 239 पुलिस रिपोर्ट, उसके साथ भेजे गए दस्तावेजों और पक्षों को सुनवाई का अवसर देने के बाद अभियुक्त की जांच के आधार पर साक्ष्य दर्ज करने से पहले निर्वहन का प्रावधान करती है। हालांकि, धारा 245 के तहत आरोप मुक्त करने का चरण धारा 244 में संदर्भित साक्ष्य प्रस्तुत किए जाने के बाद ही आता है।

31.3. इस प्रकार, इन प्रावधानों में प्रयुक्त भाषा में अंतर है। लेकिन, हमारी राय में, इन अंतरों के बावजूद, और जो भी प्रावधान लागू हो, न्यायालय को इस स्तर पर यह देखना आवश्यक है कि अभियुक्त के खिलाफ कार्यवाही करने के लिए प्रथम दृष्टया मामला बनता है। इस संबंध में इस न्यायालय के आर.एस. नायक बनाम ए.आर. अंतुले [(1986) 2 एससीसी 716: 1986 एससीसी (क्रि) 256] के निर्णय का संदर्भ लिया जा सकता है। यह इस प्रकार है: (एससीसी पृष्ठ 755-56, पैरा 43)

> "43. स्थिति में इस अंतर के बावजूद इसमें कोई संदेह की गुंजाइश नहीं है कि जिस चरण पर मजिस्ट्रेट को धारा 245(1) के तहत आरोप तय करने के सवाल पर विचार करना आवश्यक है वह एक प्रारंभिक चरण है और प्रथम दृष्टया मामले का परीक्षण लागू किया जाना चाहिए। तीनों धाराओं की भाषा में अंतर के बावजूद, कानूनी

स्थिति यह है कि यदि ट्रायल कोर्ट को संतुष्टि हो जाती है कि प्रथम दृष्टया मामला बनता है, तो आरोप तय किया जाना चाहिए।"

9.2 एस. सेल्वी (सुप्रा) के मामले में बाद के फैसले में इस न्यायालय ने सीआरपीसी की धारा 227/228 के चरण में आरोप तय करते समय सिद्धांतों का सारांश दिया है। इस न्यायालय ने पैराग्राफ 6 और 7 में निम्नलिखित अवलोकन और निर्णय दिया है:

> "6. इस न्यायालय द्वारा अनेक निर्णयों में यह बात अच्छी तरह से स्थापित की गई है, जिसमें भारत संघ बनाम प्रफुल्ल कुमार सामल [भारत संघ बनाम प्रफुल्ल कुमार सामल, (1979) 3 एससीसी 4 : 1979 एससीसी (क्रि) 609], दिलावर बालू कुराने बनाम महाराष्ट्र राज्य [दिलावर बालू कुराने बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2002) 2 एससीसी 135 : 2002 एससीसी (क्रि) 310], सज्जन कुमार बनाम सीबीआई [सज्जन कुमार बनाम सीबीआई, (2010) 9 एससीसी 368 : (2010) 3 एससीसी (क्रि) 1371], राज्य बनाम ए. अरुण कुमार [राज्य बनाम ए. अरुण कुमार, (2015) 2 एससीसी 417 : (2015) 2 एससीसी (सीआरआई) 96: (2015) 1 एससीसी (एल एंड एस) 505], सोनू गुप्ता बनाम दीपक गुप्ता [सोनू गुप्ता बनाम दीपक गुप्ता, (2015) 3 एससीसी 424: (2015) 2 एससीसी (सीआरआई) 265], उड़ीसा राज्य बनाम देबेंद्र नाथ पाढ़ी [उड़ीसा राज्य बनाम देबेंद्र नाथ पाढ़ी, (2003) 2 एससीसी 711 : 2003 एससीसी (सीआरआई) 688], निरंजन सिंह करम सिंह पंजाबी बनाम जीतेन्द्र भीमराज बिजया [निरंजन सिंह करम सिंह पंजाबी बनाम जीतेन्द्र भीमराज बिजया, (1990) 4 एससीसी 76 : 1991 एससीसी (सीआरआई) 47] और अधीक्षक। एवं कानूनी मामलों का स्मरणकर्ता बनाम अनिल कुमार भुंजा [विधिक मामलों के अधीक्षक एवं स्मरणकर्ता बनाम अनिल कुमार भूंजा, (1979) 4 एससीसी 274: 1979 एससीसी (क्रि) 1038] कि सत्र मामलों में संहिता की धारा 227 के तहत आरोप तय करने के प्रश्न पर विचार करते समय न्यायाधीश (जो वारंट मामलों से संबंधित सीआरपीसी की धारा 239 के समान है) के पास यह पता लगाने के सीमित उद्देश्य के लिए सबूतों को छांटने और तौलने की निस्संदेह शक्ति है कि अभियुक्त के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामला बनता है या नहीं; जहां अदालत के सामने रखी गई सामग्री अभियुक्त के खिलाफ गंभीर

संदेह प्रकट करती है जिसे ठीक से स्पष्ट नहीं किया गया है, अदालत आरोप तय करने में पूरी तरह से न्यायसंगत होगी; कुल मिलाकर अगर दो दृष्टिकोण समान रूप से संभव हैं और न्यायाधीश को संतुष्टि है कि उसके सामने पेश किए गए साक्ष्य अभियुक्त के खिलाफ कुछ संदेह तो पैदा करते हैं लेकिन गंभीर संदेह नहीं, तो उसे अभियुक्त को बरी करने का पूरा अधिकार है। न्यायाधीश केवल एक डाकघर या अभियोजन पक्ष के मुखपत्र के रूप में कार्य नहीं कर सकता है, बल्कि उसे मामले की व्यापक संभावनाओं, बयानों और अदालत के सामने पेश किए गए दस्तावेजों के कुल प्रभाव, मामले में दिखाई देने वाली किसी भी बुनियादी कमज़ोरी आदि पर विचार करना होगा। हालांकि इसका मतलब यह नहीं है कि न्यायाधीश को मामले के पक्ष और विपक्ष में एक व्यापक जांच करनी चाहिए और सामग्री का वजन करना चाहिए जैसे कि वह एक परीक्षण कर रहा हो।

7. सज्जन कुमार बनाम सीबीआई [सज्जन कुमार बनाम सीबीआई, (2010) 9 एससीसी 368: (2010) 3 एससीसी (क्रि) 1371] में, इस न्यायालय ने संहिता की धारा 227 और 228 के दायरे के बारे में विभिन्न निर्णयों पर विचार करते हुए निम्नलिखित सिद्धांत निर्धारित किए: (एससीसी पृष्ठ 376-77, पैरा 21)

i. धारा 227 सीआरपीसी के तहत आरोप तय करने के सवाल पर विचार करते समय न्यायाधीश के पास सबूतों को छांटने और तौलने का निस्संदेह अधिकार है, जिसका सीमित उद्देश्य यह पता लगाना है कि आरोपी के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामला बनता है या नहीं। प्रथम दृष्टया मामला निर्धारित करने का परीक्षण प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा।

ii. जहां अदालत के समक्ष प्रस्तुत सामग्री से अभियुक्त के विरुद्ध गंभीर संदेह का पता चलता है, जिसे उचित रूप से स्पष्ट नहीं किया गया है, वहां अदालत द्वारा आरोप तय करना और मुकदमा चलाना पूरी तरह से उचित होगा।

iii. न्यायालय केवल डाकघर या अभियोजन पक्ष के मुखपत्र के रूप में कार्य नहीं कर सकता, बल्कि उसे मामले की व्यापक

संभावनाओं, साक्ष्यों और न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत दस्तावेजों के समग्र प्रभाव, किसी भी बुनियादी कमियों आदि पर विचार करना होगा। हालांकि, इस स्तर पर मामले के पक्ष और विपक्ष में कोई जांच नहीं हो सकती और साक्ष्यों का मूल्यांकन इस तरह नहीं किया जा सकता जैसे कि वह कोई मुकदमा चला रहा हो।

iv. यदि रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर न्यायालय यह राय बना सकता है कि अभियुक्त ने अपराध किया है, तो वह आरोप तय कर सकता है, हालांकि दोषसिद्धि के लिए यह निष्कर्ष उचित संदेह से परे साबित होना आवश्यक है कि अभियुक्त ने अपराध किया है।

v. आरोप तय करते समय रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री के सत्यापन मूल्य पर विचार नहीं किया जा सकता है, लेकिन आरोप तय करने से पहले अदालत को रिकॉर्ड पर रखी गई सामग्री पर अपना न्यायिक दिमाग लगाना चाहिए और इस बात से संतुष्ट होना चाहिए कि आरोपी द्वारा अपराध करना संभव था।

vi. धारा 227 और 228 के चरण में, न्यायालय को रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री और दस्तावेजों का मूल्यांकन करना आवश्यक है ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या उनसे उभरने वाले तथ्य उनके चेहरे पर लिए गए हैं 8/31/23, 3:08 PM तरुण जीत तेजपाल बनाम गोवा राज्य लगभग: रिक्त 8/10 मूल्य कथित अपराध का गठन करने वाले सभी तत्वों के अस्तित्व का खुलासा करते हैं। इस सीमित उद्देश्य के लिए, साक्ष्य को छान लें क्योंकि उस प्रारंभिक चरण में भी यह उम्मीद नहीं की जा सकती है कि अभियोजन पक्ष द्वारा बताई गई सभी बातों को सत्य के रूप में स्वीकार किया जाए, भले ही वह सामान्य ज्ञान या मामले की व्यापक संभावनाओं के विपरीत हो।

vii. यदि दो दृष्टिकोण संभव हैं और उनमें से एक केवल संदेह को जन्म देता है, जैसा कि गंभीर संदेह से अलग है, तो ट्रायल जज को अभियुक्त को बरी करने का अधिकार होगा

और इस स्तर पर, उसे यह नहीं देखना है कि ट्रायल दोषसिद्धि या बरी होने के साथ समाप्त होगा।"

9.3 मौविन गोडिन्हो (सुप्रा) के मामले में इस न्यायालय के पास यह विचार करने का अवसर था कि सीआरपीसी की धारा 227/228 के तहत आरोप तय करते समय प्रथम दृष्टया मामला कैसे निर्धारित किया जाए। उसी निर्णय में इस न्यायालय ने यह टिप्पणी की और माना कि सीआरपीसी की धारा 227 के तहत आरोप तय करने के चरण में प्रथम दृष्टया मामले पर विचार करते समय मामले के पक्ष और विपक्ष में कोई भटकावपूर्ण जांच नहीं की जा सकती और साक्ष्यों का मूल्यांकन इस तरह नहीं किया जा सकता जैसे कि वह कोई मुकदमा चला रहा हो।

9.4 इस स्तर पर स्त्री अत्याचार विरोधी परिषद (सुप्रा) के मामले में इस न्यायालय के निर्णय का भी संदर्भ लिया जाना आवश्यक है। उक्त निर्णय में इस न्यायालय को सीआरपीसी की धारा 227/228 के तहत मामले का निर्णय लेने के चरण में जांच के दायरे पर विचार करने का अवसर मिला था। उक्त निर्णय में इस न्यायालय की टिप्पणियां पैराग्राफ 11 से 14 में निम्नानुसार हैं:

> "11. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 227, पक्षों की ओर से दिए गए तर्कों पर लागू होती है, जिसमें प्रावधान है:
>
> "227. उन्मोचन.-- यदि मामले के अभिलेख और उसके साथ प्रस्तुत दस्तावेजों पर विचार करने के पश्चात, तथा इस संबंध में अभियुक्त और अभियोजन पक्ष की दलीलों को सुनने के पश्चात न्यायाधीश का विचार है कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए कोई पर्याप्त आधार नहीं है, तो वह अभियुक्त को उन्मोचित कर देगा और ऐसा करने के लिए उसके कारण दर्ज करेगा।"
>
> 12. धारा 228 के अनुसार न्यायाधीश को आरोप तय करना आवश्यक है, यदि वह समझता है कि यह मानने का आधार है कि अभियुक्त ने अपराध किया है। इन दोनों धाराओं की परस्पर क्रिया पहले से ही इस न्यायालय द्वारा विचारणीय विषय रही है। बिहार राज्य बनाम रमेश सिंह [(1977) 4 एससीसी 39: 1977 एससीसी (क्रि) 533: (1978) 1 एससीआर 257] में, उंटवालिया, जे. ने उक्त धाराओं के दायरे की व्याख्या करते हुए कहा: [एससीआर पृष्ठ 259: एससीसी पृष्ठ 41-42: एससीसी (क्रि) पृष्ठ 535-36, पैरा 4]
>
> दोनों प्रावधानों को एक साथ पढ़ने पर, जैसा कि होना चाहिए, यह

स्पष्ट होगा कि मुकदमे की शुरुआत और प्रारंभिक चरण में अभियोजक द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले साक्ष्य की सच्चाई, सत्यता और प्रभाव का सावधानीपूर्वक न्याय नहीं किया जाना चाहिए। न ही अभियुक्त के संभावित बचाव को कोई महत्व दिया जाना चाहिए। मुकदमे के उस चरण में न्यायाधीश के लिए किसी भी विस्तार से विचार करना और संवेदनशील संतुलन में तौलना अनिवार्य नहीं है कि क्या तथ्य, यदि साबित हो जाते हैं, तो अभियुक्त की निर्दोषता के साथ असंगत होंगे या नहीं। परीक्षण और निर्णय का मानक जो अभियुक्त के अपराध या अन्यथा के बारे में निष्कर्ष दर्ज करने से पहले अंतिम रूप से लागू किया जाना है, उसे संहिता की धारा 227 या धारा 228 के तहत मामले का फैसला करने के चरण में बिल्कुल लागू नहीं किया जाना चाहिए। उस अवस्था में न्यायालय को यह नहीं देखना होता कि अभियुक्त को दोषी ठहराने के लिए पर्याप्त आधार है या नहीं या क्या मुकदमा उसके दोषी ठहराए जाने के साथ ही समाप्त होगा। यदि मामला संदेह के दायरे में रहता है तो अभियुक्त के विरुद्ध प्रबल संदेह मुकदमे के समापन पर उसके अपराध के प्रमाण का स्थान नहीं ले सकता। लेकिन प्रारंभिक अवस्था में यदि प्रबल संदेह है जिसके कारण न्यायालय को लगता है कि अभियुक्त द्वारा अपराध किए जाने की धारणा के लिए आधार है तो न्यायालय यह नहीं कह सकता कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार नहीं है।

13. यूनियन ऑफ इंडिया बनाम प्रफुल्ल कुमार सामल [(1979) 3 एससीसी 4 : 1979 एससीसी (सीआरआई) 609 : (1979) 2 एससीआर 229] में, न्यायमूर्ति फजल अली, ने कुछ सिद्धांतों का सारांश दिया: [एससीआर पृ. 234-35 : एससीसी पृ. 9 : एससीसी (सीआरआई) पृ. 613-14, पैरा 10]

i. न्यायाधीश को धारा 227 के तहत आरोप तय करने के प्रश्न पर विचार करते समय साक्ष्यों की छानबीन करने और उनका मूल्यांकन करने का निस्संदेह अधिकार है, ताकि यह पता लगाया जा सके कि अभियुक्त के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामला बनता है या नहीं।

ii. जहां अदालत के समक्ष प्रस्तुत सामग्री से अभियुक्त के विरुद्ध गंभीर संदेह का पता चलता है, जिसे उचित रूप से

स्पष्ट नहीं किया गया है, वहां अदालत आरोप तय करने और मुकदमा चलाने में पूरी तरह से न्यायसंगत होगी।

iii. प्रथम दृष्टया मामला निर्धारित करने का परीक्षण स्वाभाविक रूप से प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा और सार्वभौमिक आवेदन का नियम निर्धारित करना कठिन है। हालाँकि, यदि दो दृष्टिकोण समान रूप से संभव हैं और न्यायाधीश संतुष्ट है कि उसके सामने प्रस्तुत साक्ष्य अभियुक्त के विरुद्ध कुछ संदेह तो पैदा करते हैं लेकिन गंभीर संदेह नहीं, तो वह अभियुक्त को दोषमुक्त करने के अपने अधिकार के भीतर होगा।

iv. संहिता की धारा 227 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए न्यायाधीश जो वर्तमान संहिता के तहत एक वरिष्ठ और अनुभवी न्यायालय है, वह केवल एक डाकघर या अभियोजन पक्ष के मुखपत्र के रूप में कार्य नहीं कर सकता है, बल्कि उसे मामले की व्यापक संभावनाओं, साक्ष्य के कुल प्रभाव और अदालत के समक्ष प्रस्तुत दस्तावेजों, मामले में दिखाई देने वाली किसी भी बुनियादी कमियों आदि पर विचार करना होगा। हालांकि इसका मतलब यह नहीं है कि न्यायाधीश को मामले के पक्ष और विपक्ष में एक व्यापक जांच करनी चाहिए और सबूतों को तौलना चाहिए जैसे कि वह एक परीक्षण कर रहा हो।

14. ये दोनों निर्णय अलग-अलग सिद्धांत निर्धारित नहीं करते हैं। प्रफुल्ल कुमार केस [(1979) 3 एससीसी 4: 1979 एससीसी (क्रि) 609: (1979) 2 एससीआर 229] ने केवल वही दोहराया है जो रमेश सिंह केस [(1977) 4 एससीसी 39: 1977 एससीसी (क्रि) 533: (1978) 1 एससीआर 257] में कहा गया है। वास्तव में, धारा 227 में ही अभियुक्त को दोषमुक्त करने के उद्देश्य से जांच के दायरे के बारे में पर्याप्त दिशा-निर्देश दिए गए हैं। इसमें प्रावधान है कि "न्यायाधीश तब दोषमुक्त करेंगे जब उन्हें लगे कि अभियुक्त के खिलाफ कार्यवाही करने के लिए कोई पर्याप्त आधार नहीं है"। संदर्भ में "आधार" दोषसिद्धि का आधार नहीं है, बल्कि अभियुक्त को मुकदमे में लाने का आधार है। अभियुक्त के दोषी या निर्दोष होने का निर्धारण मुकदमे के दौरान ही होगा, आरोप तय करते समय नहीं। इसलिए, न्यायालय को सामग्री की

छानबीन और मूल्यांकन में विस्तृत जांच करने की आवश्यकता नहीं है। न ही विभिन्न पहलुओं पर गहराई से विचार करने की आवश्यकता है। न्यायालय को केवल यह विचार करना है कि यदि रिकॉर्ड में साक्ष्य सामग्री को आम तौर पर स्वीकार किया जाता है, तो क्या वह अभियुक्त को अपराध से उचित रूप से जोड़ सकती है। अब और जांच करने की आवश्यकता नहीं है।"

<u>9.5 उपरोक्त निर्णयों</u> में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून को लागू करते हुए और सीआरपीसी की धारा 227/228 के तहत आरोप तय करने के चरण में जांच के दायरे पर विचार करते हुए, हम इस राय के हैं कि अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वकील द्वारा गुण-दोष के आधार पर प्रस्तुत किए गए तर्कों पर इस चरण में विचार करने की आवश्यकता नहीं है। अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वकील द्वारा गुण-दोष के आधार पर जो भी प्रस्तुत किए गए हैं, उन पर विचारण के दौरान उचित चरण में विचार किया जाना आवश्यक है। कुछ प्रस्तुतियों को अभियुक्त के बचाव के रूप में माना जा सकता है। अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वकील द्वारा पीड़ित/अभियोक्ता के आचरण पर प्रस्तुत किए गए कुछ प्रस्तुतियों पर विचारण के दौरान उचित चरण में विचार किया जाना आवश्यक है। उन पर आरोप तय करने के इस चरण में विचार करने की आवश्यकता नहीं है। रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री पर विचार करने के बाद, हम इस राय पर हैं कि आरोपी के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामला बनता है, जिसके लिए उस पर मुकदमा चलाया जाना चाहिए। आरोपी के खिलाफ पर्याप्त सामग्री है और इसलिए विद्वान ट्रायल कोर्ट ने आरोपी के खिलाफ आरोप सही ढंग से तय किया है और उच्च न्यायालय ने भी इसकी पुष्टि की है। इस न्यायालय के हस्तक्षेप की कोई आवश्यकता नहीं है।

19. एफ.आई.आर. में लगाए गए आरोपों और आई.ओ. द्वारा एकत्र साक्ष्यों से प्रथम दृष्टया यह पता चला कि याचिकाकर्ता कामिनी मोहन मेहरा, तत्कालीन शाखा प्रबंधक, एस.बी.आई. मुरहू शाखा, जिला खूंटी, ने ही मिथिला शरण के खाते से संजय कुमार कुंडू के खाते में 35,00,000/- रुपए की बड़ी राशि स्थानांतरित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी, जिसका उद्देश्य संजय कुमार कुंडू से भूमि खरीदना था और जब इस गबन का खुलासा हुआ तो कामिनी मोहन मेहरा ने ही पूरी राशि विभिन्न किस्तों में और अपने दूतों के माध्यम से मिथिला शरण के खाते में जमा की थी। इस प्रकार मिथिला शरण

के खाते में 35,00,000/- रुपए की बड़ी राशि स्थानांतरित करते समय याचिकाकर्ता की ओर से उक्त राशि का गबन करने की बेईमानी थी।

20. बाद में गबन की गई राशि जमा करने मात्र से आरोपी/याचिकाकर्ता को उस अपराध के आरोप से मुक्त नहीं किया जा सकता जो अंततः उसके द्वारा किया गया है।

21. एफ.आई.आर. में लगाए गए आरोपों, जांच के दौरान जांच अधिकारी द्वारा एकत्र किए गए संचयी साक्ष्यों, मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्यों तथा माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के स्थापित प्रस्तावों के मद्देनजर, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, आरोपी के खिलाफ मुकदमा चलाने के लिए पर्याप्त आधार हैं। ऐसे में, डिस्चार्ज आवेदन को खारिज करने वाले निचली अदालत द्वारा पारित 17 जनवरी, 2023 के विवादित आदेश में हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

22. तदनुसार, यह आपराधिक पुनरीक्षण खारिज किया जाता है और नीचे के विद्वान न्यायालय द्वारा पारित विवादित आदेश की पुष्टि की जाती है।

23. याचिकाकर्ता को दिनांक 27 जून, 2023 के आदेश द्वारा दी गई अंतरिम सुरक्षा रद्द की जाती है।

24. इस आदेश की एक प्रति संबंधित न्यायालय को फैक्स के माध्यम से भेजी जाए।

(न्यायमूर्ति सुभाष चंद)

रोहित/एएफआर

यह अनुवाद सुश्री लीना मुखर्जी, पैनल अनुवादक के द्वारा किया गया।